Year-5, Vol -10
April- September-2015

ISSN- 2249-4383

॥ सुराष्ट्रीया ॥

Bi-Annual National Level, Registered, Recognized, Refereed & Peer Reviewed Research Journal

॥ तमसो मा ज्योतिर्गमय ॥

प्रस्थान फाउन्डेशन

Chief Editor

Dr. Raja N. Kathad
Associate Professor
Department Of Sanskrit
Saurashtra University
Rajkot – 360005
(Gujarat – India)

Editors

Prof. Dinesh M. Gohel
Dr.Bhartkumar N. Jadav
Dr.Kantilal G. Kathad
Gauri K.Makwana
Chandulal V.Parmar [U.G.C-RGNF-SRF]

Publisher

Prasthan Foundation – Junagadh – Gujarat
Regi. No- E/4532/ Jun/ Date-19/8/2000

ISSN – 2249 – 4383

श्रीमद्भागवत के सन्दर्भ में "पर्यावरणसंचेतना"

डॉ. महेन्द्रकुमार अं.दवे *

परि+आ+वृ+ल्युट् से निष्पन्न इस पर्यावरण का अर्थ है, "मनुष्य के चारों और प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष जुडा हुआ प्रकृति, आकाश, जल, वायु इत्यादि प्रकार के वातावरण"[१] जैसे प्रकृति चेतना के तत्त्वों के महत्त्व कों समजना, इनका सही उयपोग करना तथा इनकी सुरक्षा एवं संवर्धन के प्रयास करना पर्यावरण चेतना के प्रति प्रतिभाव को प्रगट करता है । मनुष्य का अवतरण होने से ही वहा पर्यावरण का अविभाज्य अंग बना हुआ हैं । प्रकृति और मनुष्य के इस निकट सम्बन्ध के कारण ही प्रकृति संचेतना अति आवश्यक बनी हुई हैं ।

प्राचीनकाल में प्रकृति का स्वरूप अत्यन्त शुद्ध था । "माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्या ।"[२] कहकर पृथ्वी के पुत्र बनकर संरक्षण की बात कही गयी हैं तथा च-

गिरयस्ते पर्वता हिमवन्तोऽण्यं ते पृथिवी स्योनमस्तु ।
बभ्रूं कृष्णां रोहिणां विश्वरूपां ध्रुवां भूमिं पृथिवीमिद्गुप्ताम् ।
अनीतो उहतो अक्षतो उध्यष्ठां पृथिवीमहम् ।।[३]

इस मन्त्र मं समस्त प्रकृतिको धारण करने वाली और इन्द्र द्वारा सुरक्षित भूमि की वंदना की गयी हैं । भारतीय चिंतकों पर्यावरण संचेतना के बारे में विशेष चिंतित थे । पर्यावरण की समतुला बनाये रखनें की भी प्रार्थना गौतम ऋषिने ऋग्वेद में की हैं ।

मधुवाता ऋतायते मधुक्षरन्ति सिन्धवः ।
माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः ।
मधु नक्तमुषसो मधुमत् पार्थिवं रजः ।
मधु द्यौरस्तु नः पिता ।।
मधुमान् नो वनस्पतिर्मधुर्मा अस्तु सूर्यः ।
माध्वीर्गावो भवन्तु नः ।।[४]

वायु, तेज, जल, दिन, रात आदि पदार्थ की संतुलितता ही समाज में शान्ति और समृद्धि बनाता हैं । ऐसा यजुर्वेद के ऋषि भी कहता हैं जैसे कि -

"शं नो वातः पर्वतां शं नस्तपतु सूर्यः ।
शं नः क्रनिक्रद्देवः पर्जन्यो अभिवर्षतु ।।[५]

पुराणों ने भी प्रकृति की विशेष अवधारणा की हैं पुरानोम्के नाम प्रकृति के विकास क्रम के साक्षी हैं । पुरानों के अनुसार सब में ईश्वर का वास हैं । एवं भागवत पुरान् में भी चराचरात्मक विश्व परमात्म तत्त्व से व्याप्त होने का कहा हैं ।[६] और जड एवं चेतन सभी चराचरों का सेवन ही मेरी पूजा हैं । एसा कहकर भी विश्वचेतना की बात बताई हैं ।[७] राजा प्राचीन बर्हि के दशपुत्रों (प्रचेताओं) तप की समाप्ति करके जब समुद्र में से बहार नीकले तब उन्होंने पिता निवृत्ति परायणता के कारण समग्र पृथ्वी वृक्षों से झूम उठी थी वह देखकर उन्होंने मुखमें से वायु और अग्नि का सृजन करके वृक्षा को जलाने लगे । तब चन्द्रमाने दयापात्र वृक्षों का ऐसा द्रोह मत करो, हे प्रजापतिओं ये वनस्पति और औषधियों प्रजाहित के लिये बनाई हुई हैं ।[८] आज सीमेन्ट क्रोक्रेट का उद्योगों का अतिरेक होने के कारण वन और वृक्षों का निकन्दन हो रहा हैं । इसी वजहसे कभी भी न देखी हुई भूंकप, अतिवृष्टि, अनावृष्टि जैसी कुदरती आफत आज जनसमाज में बनती जा

* एसोसिएट प्रोफेसर, साहित्यविभाग,
श्रीसोमनाथ संस्कृत युनिवर्सिटी, वेरावल,
जि. गीर-सोमनाथ,

रही हैं । इसीलिये पर्यावरण संचेतना आज अति आवश्यक बन गयी हैं । जब भी मानव ने प्राकृतिक, संतुलन में अनपेक्षित, अनधिकृत और अनावश्यक अन्तराय उत्पन्न किया हैं, तभी पर्यावरण प्रदूषण से संबन्ध चुनोतियों का सामना उसे करना पड़ा हैं । भागवतकार कहते हैं कि यदि आप वृक्षों का विनाश करोंगे तो सृष्टि का भी विनाश हो जायेगा । अत:, वृक्ष वनस्पति की रक्षा की प्रार्थना मिलती हैं ।[९] विष्णुपुराण में भी मनुष्य की दृष्ट प्रकृति के विरुद्ध चेतावनी का एक श्लोक मिलता हैं जैसा की –"है दृष्टात्मा यदि तुमने किसी पक्षीकों भूनकर खाया तो समझले तुम्हारे सारें यज्ञ, पूजा, पाठ, तीर्थ-यात्रा और पवित्र स्नान आदि व्यर्थ हैं ।[१०]

पर्यावरण संतुलन में 'वृक्ष' महत्त्व की भूमिका निभाते हैं । इसीलिये पौराणिक साहित्य में वृक्षों का बहुत महिमान्वित किया गया हैं । क्योंकि पौराणिक काल में पर्यावरण प्रदूषण की समस्या नहीं थीं । अत: धार्मिक और सामाजिक उपयोग की दृष्टि से ही वृक्षों का महत्त्व प्रकाशित करते हुए वृक्षारोपण एवं वृक्षसंरक्षण की प्रेरणा दी गयी हैं । मत्स्यस्यपुराण में वृक्षोपासना और वृक्षसंरक्षण की प्रेरणा दी गयी हैं ।[११] इस वृक्ष को एक अमूल्य प्राकृतिक संपदा एवं भोजन श्रृङ्खला की आधारभूत इकाई हैं । प्राचीन काल से ही संस्कृत वाङ्मय में वनदेवियों की कल्पना तथा सभी मानवीय आवश्यक्ताओं के पूर्ण करनेवाले कल्प वृक्ष की अवधारणा वनों के प्रति पूज्य भाव एवं वनों की उपादेयता के परिचायक हैं । कौटिल्यने 'अर्थशास्त्र' में वन कों वृक्षों के ही अर्थ में न मानकर वनस्पति जगत्, वन्य-प्राणी, वन्य-द्रव्य, वनभूमि एवं इन से प्राप्त विशेष संपदा की सम्मिलित संज्ञा हैं । जैसे कि – "पशु, मृग, द्रव्य, हस्तिवन परिग्रहो वनम् ।[१२] भविष्यवेत्ता ऋषि भी यह जानते थे कि मानव का जीवन पशुओं एवं पेड़ पौद्यों पर आश्रित हैं । पेड पौधों एवं पशुओं का जीवन वर्षा पर अवलंबित हैं । क्योंकि वर्षा के द्वारा ही प्रकृति हरी- भरी होंगी, और मानव के लिऐ दूध, अन्न, फल, औषधियों की कमी न होंगी । शतपथब्राह्मण में कहा हैं कि- "अग्नि से धूम, धूम से बादल और बादलों से वृष्टि होती हैं ।[१३] वृक्षों के महत्त्व श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध में श्रीकृष्ण गोप वृन्दों को कहते हैं – जैसे कि-

निराधार्कातपे तिग्मे छायाभि स्वाभिरात्मन: ।
आतपत्रायितान्वीक्ष्य द्रुमानाह व्रजोकस: ।।
पश्यतैतान् महाभागान् परार्थैकान्तजीवितान् ।
वात वर्षातपहिमान् सहन्तो वारयन्ति न: ।।
अहो एषां वरं जन्म सर्व प्राण्युपजीवनम् ।
सुजनस्येव येषां वै विमुखा यान्ति नार्थिन: ।।
पत्र पुष्प फलच्छाया मूल वल्कल दारुभि: ।
गन्ध निर्यासभस्मा स्थितोक्मै: कामान् वितन्वते ।।[१४]

इस तरह वृक्ष की नि:स्वार्थ सेवा भावना को कहते हुए वृक्षसंरक्षण की भागवत में की हुई बात को आज दूषित होनेवाला पर्यावरण के बारे में भी इतना ही महत्त्वपूर्ण मानने का तात्पर्य संन्निहित हैं । इस वृक्षों के स्वास्थ्य एवं संवृद्धि के लिये 'यज्ञ' की आवश्यकता बताते हुए कहा है कि यज्ञ न केवल पर्यावरण को शुद्ध करता हैं, अपितु वह धन-धान्य एवं पुष्टि प्रदान करता हैं ।[१५]

शतपथब्राह्मण में यज्ञ को श्रेष्ठतम कर्म कहा गया हैं ।[१६] तथा यज्ञ को देवों का अन्न भी कहा हैं ।[१७] इसी तरह यज्ञ से पर्यावरण को सुरक्षित रखा जाने की कामना दी हैं । इसी यज्ञ से पर्यावरण शुद्धि के साथ वृष्टि भी होती हैं । जल और वायु भी पर्यावरण संरक्षण में प्रमुख भूमि का निर्वाह करते हैं । वास्तव में ये दोनों तत्त्वों हमारे जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं को भी अवारणीय रूप से तथा बहुत निकट से प्रभावित करते हैं । इन दोनों तत्त्वों में से किसी एक का अभाव अथवा दोषयुक्त

होना जीवन के अस्तित्व को भी संकट पेदा कर देता हैं । वैदिक ऋषिने जल के विभिन्न स्रोत उसके आरोग्यवर्धक, बलवर्धक और जल चिकित्सा के लिये उपयोगी होने की बात कही गयी हैं ।[१८] जल को बार-बार जीव, उपजीव, संजीव, जीवात्मा कहना ही उसे जीवन स्वरूप स्वीकारकर जल के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करना हैं । आकाश से व्याप्त जल को रक्षा करके की प्रार्थना भी ऋग्वेद में मिलती हैं ।[१९] और यजुर्वेद में भी पेयजल, रोगनिवारकजल, उर्ध्वगामीजल, स्थिरजल, झरनेवाले जल, प्रवाहितजल, कुएँ का जल, धारणकरने योग्य और वायु में स्थिर जलों के निमित्त विभिन्न आहुतियाँ प्रदान करने की कामना की गयी हैं ।[२०] भागवत-पुराण में भी जलरक्षा विधान मिलता हैं । कालियनागने दूषित किया हुआ यमुनाजल की शुद्धि के लिए श्रीकृष्ण ने कालिय नाग की धरा में से दूर कर दिया, जैसे कि-

विलोक्य दूषितां कृष्णां कृष्णः कृष्णा हीना विभुः ।
तस्या विशुद्धिमन्विच्छन् सर्वं तमुदवासयत् ।।[२१]

गोपीयों निर्वस्त्र होके यमुनाजी में जब स्नान कर रही थीं तभी जल के अधिष्ठाता देव वरुण का और यमुनाजी का अपराध हुआ ऐसा कहकर श्रीकृष्णने गोपीयों को शिक्षा देने के लिये उनके वस्त्रों को ले लिया, और इस दूषित हुए जल अधिष्ठाता की क्षमा प्रार्थना करने को कहा -

यूयं विवस्त्रा यदपो धृतव्रता
व्यगाहतैतत्तहु देव हेलनम् ।
बध्वाऽञ्जलिं मूध्न्यर्पनुत्तयेऽहसः
कृत्वा नमोऽधो वसनं प्रगृह्यताम् ।।[२२]

इस पर्यावरण रक्षण की उच्चत्तम भावना वैदिक परम्परा में पायी जाती हैं । ऋग्वेद के अनेक मण्डलों में इन्द्र की स्तुति में जलरोधक वृत्रसंग्राम की भी बात निहित हैं । ये वृत्रका निर्देश निरुक्त-२-१६ में मिलता हैं । आकाश कों चारों और से आवृत्त करनेवाला मेघ ही वृत्र होने को कहा हैं । और इसको अपने वज्र से संहार करने वाला वर्षा के देव इन्द्र हैं और प्रत्येक वर्षा ऋतु में गगणा मंडल में होनेवाला यह भौतिक संग्राम ही इन्द्रवृत्र युद्ध का परिदृश्यमान भौतिक दृश्य हैं । और भागवत में भी यही मिथक देवासुर संग्राम और राम-रावण युद्ध के रूप में विकसित हुआ ।[२३] किन्तु मूलतः यह पर्यावरण को क्षति पहोंचाने वाली शक्तियों का युद्ध हैं, जिस में विजय संरक्षण ताकातों की होती हैं ।

निष्कर्ष यह होता हैं कि प्रायः समग्र वैदिक एवं पौराणिक साहित्य के साथ श्रीमत् भागवत में भी आधुनिक समय का अति संवेदनशील ऐसे पर्यावरण के महत्त्व के बारे में अङ्गुलि निर्देश किया हैं वहाँ प्रकृति और पर्यावरण के तत्त्वों-पृथ्वी,जल, अग्नि, वायु और आकाशकों जीवन-रक्षा में सर्वथा सक्षम तथा जीवन निर्वाह में उपयोगी मानकर स्तुति की हैं । पर्यावरण के प्रत्येक तत्त्वकों देवता मानकर उसकी स्तुति एवं उसके साथ आत्मीय सम्बन्ध स्थापन करने से ही मानव के लिये कल्याण कामना के मूल से पर्यावरण के प्रति श्रद्धा के भाव को मुखरित किया गया हैं । यहीं नहीं पर्यावरण शुचिता, संवर्धन और संरक्षण हमारी दिनचर्या का अंग बन सके ऐसा संदेश दिया हैं । इनकी स्तुति अभ्यर्थना, प्रार्थना एवं बोध में अथवा इन से मानव कल्यानार्थे की गयी कामना में या फिर इनकी महिमा, उदारता, शक्तिमानता, सर्वव्यापकता के वर्णन में इनके संरक्षण की प्रासंगिकता स्पष्टतः सन्निहित हैं ।

ISSN – 2249 – 4383

पादटीप

१. संस्कृत साहित्य में राष्ट्रीयभावना, डॉ. हरिराय दीक्षित- पृ.५१

२. अथर्ववेदः, १२-१३-२७

३. अथर्ववेदः, १२-१-११

४. ऋग्वेदः १/९०/६-८

५. शुक्लयजुर्वेद संहिता, ३६-१०

६. नारायणे भगवति तदिदं विश्वमाहितम् ।
गृहीत मायोरूगुणः सर्गादावगुणः स्वतः ।। श्रीमद् भागवतम्-२-६-३०

७. सर्वाणि मद्भिण्यतया भवद्भिश्चराणि भूतानि सुता ध्रुवाणि ।
संभावितव्यानि पदे पदे वो विविक्त दृग्भिस्तदुहार्हणं मे ।। श्रीमद् भागवतम्-५-५-२६

८. श्रीमद् भागवद् पुराण - ६/४/४-१०

९. अलं दग्धैर्दुर्मदानैः खिलानां शिवमस्तु वः ।। श्रीमद् भागवतम्-६-४-१५

१०. विष्णुपुराण- ३-८-१५

११. पादापानां विधिं सूत ! यथावद् विस्तराद् वद ।
विधिना केन कर्तव्यं पादपोध्यापनं बुधैः ।। मत्स्यपुराण-५९-५

१२. अर्थशास्त्र-२-६-६

१३. अग्नें वै धूम्रो जायते धूम्राद भ्रमध्राद् वृष्टिः । शतपथ ब्राह्मण-५-३

१४. श्रीमद् भागवत्-१०/२२/३०-३१/३४

१५. अन्नाद्भवति भूतानि पर्जन्यादन्नसंभवः ।
यज्ञाद्भवति पर्जन्योः यज्ञः कर्मसमुद्भव ।। श्रीमद् भगवद्गीता-३-१४

१६. यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म.....शतपथब्राह्मण-१/७/१/५

१७. यज्ञो हि देवानाम् अन्नम् ।....शतपथब्राह्मण-५/१/१/२

१८. शं न आपो धन्वपाः शं ते संत्वनूप्याः ।
यथैव तृप्यते मयस्तास्त आदत भेषजीः ।।अथर्ववेदः१९/२/१-५

१९. जीवास्थ जीव्यासं सर्वमायुर्जीव्यासम् ।
उपजीवा स्थोपजीव्यासं सर्वमायुर्जीव्यासम् ।
संजीवा स्थ जीव्यासं सर्वमायुर्जीव्यासम् ।
जीवात्मा स्थ सं जीव्यासं सर्वमायुर्जीव्यासम् ।।अथर्ववेद-१९/६९/१-४

२०. ऋग्वेदः ७-४९-२

२१. भागवतपुराण- १०-१६-०१

२२. भागवतपुराण-१०-२२-१९

२३. भागवतपुराण-८ स्कन्ध, १०- अध्याय